National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 106-107

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नारी की भूमिका

डा0 नीतू शर्मा
रीडर–हिन्दी–विभाग, ईसाबेला थोर्बन कालेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

यह सर्वमान्य है कि मध्यकाल में सूफियों ने अपने प्रेम सिद्धान्त का प्रचार किया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने जिस कथा को चुना उसका सम्बन्ध राज–परिवारों से था, जिसमें प्रेम पीड़िता राजकुमार एवं परम सौन्दर्य की प्रतीक राजकुमारी की प्रेम चर्चा ही प्रधान है; राजकुमार एवं राजकुमारी के सम्पूर्ण जीवन का दृश्य सम्मुख उपस्थित करने में इन सूफी कवियों को लोक रीति एवं नीति, लोक विश्वास एवं अन्य विश्वास के ऐसे स्थल मिलते रहे जो तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों, विश्वासों और रीति रिवाजों का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं। सूफी कवियों की लोकदृष्टि इतनी सजग थी कि इन्होंने राज परिवार के मध्य भी साधारण जीवन की झांकी देखी है।

बहु–विवाह प्रथा के होते हुए भी कहीं भी सौतिया डाह, जलन और वैमनस्य की चर्चा अधिक नहीं मिलती। जायसी में इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। 'इन्द्रावती' में 'सुन्दर' और 'इन्द्रावती' के जीवन को अत्यन्त आनन्दमय क्रीड़ामय प्रदर्शित किया गया है। पति की श्रेष्ठता पत्नियों को सदैव मान्य है। पत्नी अपना पृथक अस्तित्व न रखकर केवल उसी की, या उसी के लिये जीना चाहती थी। पत्नी की इसी अभिलाषा का उत्कर्ष उन स्थलों पर दृष्टव्य है जहाँ वह अपना अस्तित्व मिटाकर एक स्थल पर उसकी चरण चुम्बित रज और दूसरे स्थल पर अधर चुम्बित प्याला होना चाहती है।''[1]

नारी का महत्व उसकी सामाजिक जीवन में उपयोगिता का परिचायक है। नारी के सहयोग के बिना गृहस्थ जीवन निराधार है।[2] बिना विवाह संस्कार के पितृऋृण से मुक्त नहीं हो सकती, संसार में अपनी परम्परा बनाये रखने के लिये संतान का होना अनिवार्य है। इस प्रकार मध्यकालीन योरोपीय रोमांस साहित्य की भांति सूफी साहित्य में नारी की कल्पना केवल विलास या उपभोग के साधनों के रूप में नहीं हुई है, उसके जननी रूप की चर्चा भी यथेष्ट है। प्रेम के लोक–पक्ष में इन कवियों ने जिन वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेम सम्बन्धों का वर्णन किया है, वह इस बात की पुष्टि करता है कि इन कवियों ने समाज के द्वारा निर्धारित मर्यादा नीति एवं आचरण का उल्लंघन नहीं किया है। उसमें प्रेम की स्वच्छन्दता के साथ कर्तव्य भावना का भी सामन्जस्य है। नारी की सती रूप में सौन्दर्य–मय परम सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में, एक कुलवन्ती और सतवन्ती रूप में प्रतिष्ठा होते हुए भी उसके सामाजिक स्तर में विशेष अन्तर नहीं दिखायी पड़ता। कवि ''जान'' नारी जाति को ही अच्छा नहीं समझता क्योंकि इनके कारण पुरूष के सम्मान को डर रहता है। यदि नारी किसी भी प्रकार से अपने 'शील'' की रक्षा न करे, तो पुरूष को चाहिए कि उसे ताड़ना देने में शिथिल न रहे।[3] नारी का शील गृह की सीमा में रहना ही सुरक्षित था। वही नारी कुलवन्ती एवं 'लाजवन्ती' है जो घर से बाहर न जाये। घर छोड़कर बाहर जाते ही उसकी मर्यादा, शील लज्जा ऐसे सभी सद्गुण नष्ट हो जाते है, अतः उसे अपने घर की चहार दीवारी तक ही सीमित रखना चाहिए।[4]

इतना सब होते हुए भी नारियों की क्षमता का प्रदर्शन भी इन प्रेमकाव्यों में अच्छा हुआ है। नारी शिक्षा का अधिकार सम्भवतः तब भी उन्हें था और साथ ही बहुत सम्भव है कि सहशिक्षा भी उस समय रही हो, क्योंकि नायक–नायिका के प्रेम का सम्बन्ध कई प्रेमाख्यानों में सहपाठी होने के कारण हुआ है। साधारण शिक्षा तक ही स्त्रियों की शिक्षा सीमित न थी, वे पुरूषों के बराबर ही बुद्धि विकास में अग्रसर होती थी। उस समय उच्च शिक्षा का मापदण्ड पिंगल, व्याकरण नाट्यशास्त्र एवं पुराणों का ज्ञान था, इसके अतिरिक्त उन्हें संगीत एवं कवित्व शक्ति के बारे में भी पूरी जानकारी होनी चाहिए। शिक्षा के इस स्वरूप से नारी या पुरूष दोनों ही पूर्णतया परिचित थे। 'रूपमंजरी' एवं 'पुरूषोत्तम' ऐसे नायक–नायिका का इस शिक्षा में अच्छा प्रवेश था।[5] लगभग सूफी कवियों ने अपनी नायिका को अवश्य ही वेद–पुराण में पारंगत प्रदर्शित किया है।

इतना सब होते हुए भी नारी का सम्मान नहीं था। उसे सदैव अपना सीस चरणों पर झुकाये रखना उचित था।[6] नारी स्वभाव से तुच्छ बुद्धि वाली होती है, इस भावना की रक्षा इस सत्य में होते हुए भी की जाती थी कि कुछ प्रेम सम्बन्ध में नायिकाएं नायक के बुद्धि विलास की परीक्षा कठिन पहेलियों एवं संकेतों के द्वारा करती थीं, जिसका आभास हमें विद्योतमा एवं कालिदास के आख्यानों में मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस काल में स्त्री–शिक्षा का अभाव न था।

समग्रतः हिन्दी मध्यकालीन साहित्य में नारी समस्याओं को विशेष स्थान मिला हैं। संस्कृत साहित्य तथा वेदोपनिषद की दिव्य और ज्ञानी नारियाँ मुस्लिम शासन की विभीषिका और सामन्ती तथा राजवाड़ों की विलासिता की वस्तु बनी हिन्दी साहित्य के आदिकाल से मध्यकाल के अन्त तक ये निर्जीव प्रतिमा सदृश थी जिनका धर्म, समाज, परिवार के नाम पर शोषण होता रहा तथा जो जीवन की विसंगतियों को मूक और लाचार बनी गरल पान करती रहीं। आधुनिक युग में सुधार आन्दोलनों द्वारा उनमें चैतनता आयी और वह पुनः वैदिक नारी सदृश शक्ति रूपिणी और जीवनोन्मुख हो उठी। समाज में जो स्थिति उसकी थी भी वह साहित्य में प्रतिबिम्बित मिलती है। आधुनिक युग में शिक्षा के प्रचार–प्रसार द्वारा धीरे–धीरे वह पुरूषों के समकक्ष अधिकार पाती गयी और साहित्य में भी देवी –पिशाचनी रूपों से परे उसके मानवी रूप का चित्रण होने लगा। प्रमुख रूप से व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त नारियों का समाज में स्थान, उनकी शिक्षा, पुत्र के कर्त्तव्य, विभिन्न संस्कार एवं त्योहारों का वर्णन इन प्रबन्धों की विशेषता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. यह तन जारो छार कें, कहों की पवन उड़ाव।
   मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरैं जहं पांव।। – पद्मावत–जायसी।
2. तीय बिन धर नाहिन बनै ज्यों मोती बिन सीप। – कवि जान : 'कथा छवि सागर''।
3. जान कवि – कथा छवि सागर।
4. नूर मुहम्मद – 'अनुराग बांसुरी' – पृ0 125।
5. जान कवि : रूप मंजरी।
6. ओहि रज आदर नित है रामा, चाहे सीस चरन के ठामा। – नूर मुहम्मद 'अनुराग बांसुरी।
7. कासिम शाह–हंस जवाहर।
8. चित्रावली–उस्मान।
9. नूर मुहम्मद–अनुराग बांसुरी।
10. नूर मुहम्मद– इमरावती।
11. कवि जान : कथा कंवलवती।
12. पदमावत् जायसी
13. कवि जान : कथा छवि सागर।
14. जान कवि : रूप मंजरी।